खेती-किसानी और पानी

संवाद

E-mail:sarjomsamvad@gmail.com
Website:www.samvad.net

Scanned by CamScanner

प्रकाशन वर्ष : 2017
प्रति : 1000
प्रकाशक : संवाद, 104/ए, उर्मिला इन्क्लेव, पीस रोड, लालपुर, रांची
E-mail : sarjomsamvad@gmail.com
Website : www.samvad.net
मुद्रक : कैलाश पेपर कन्वर्सन प्रा.लि., रांची

Scanned by CamScanner

दो शब्द

पूरी दुनिया जलवायु संकट से जूझ रही है। इसका मूल कारण मानव द्वारा प्रकृति का जरूरत से अधिक दोहन करना है। विकसित पश्चिमी देश गर्म हो रही धरती का तापमान नियंत्रित करने को तैयार नहीं है। अपनी सुख–सुविधाओं में कटौती करने पर राजी नहीं हैं। इसके बदले वे विकासशील देशों को जलवायु संकट से उबरने के लिए समय–समय पर बड़ी राशि देने को तैयार हैं। उनकी मनसा है कि विकासशील देश इस राशि से 'पर्यावरण मरम्मत' के विभिन्न कार्य करें जैसे – वृक्षारोपण और कार्बन उत्सर्जन में कमी करना। जलवायु संकट पर प्रत्येक वर्ष 'शिखर सम्मेलन' होते हैं। लेकिन इस दिशा में कोई ठोस सामूहिक निर्णय अब तक नहीं लिया जा सका है। विकसित तथा विकासशील सभी देशों के अपने–अपने हितों की सूची व तर्क हैं।

पारंपरिक तौर पर भारत में खेतीबारी को आजीविका का सर्वोत्तम साधन माना गया है। 'उत्तम खेती, मध्यम बान/अधम चाकरी, भीख निदान' हमारे बुजुर्ग यही सूक्ति बार–बार दोहराया करते थे। परंतु उस वक्त मौसम का मिजाज बदला नहीं था। समय पर नियमित वर्षा होती थी और उसी अनुरूप खेतीबारी भी होती थी। लेकिन जैसे–जैसे जलवायु–चक्र में बदलाव आता गया, वैसे–वैसे वर्षा जल की कमी होने लगी और किसानों को खेत व बारी की सिंचाई के लिए भूगर्भ जल का इस्तेमाल करना पड़ा। सिंचाई के इस विकल्प से खेतों में पानी पहुंच गया लेकिन धीरे–धीरे भूगर्भ जल का स्तर भी नीचे जाने लगा यानी घटने लगा। फसलों की अधिक पैदावार के मद्देनजर रासायनिक खाद, संकर बीज और कीटनाशकों का अत्यधिक इस्तेमाल होने लगा। इस प्रकार की रासायनिक खेती वाले खेतों में आवश्यकता से अधिक पानी की खपत होने लगी। भूगर्भ जल का दोहन भी अधिक होने लगा। नतीजा यह हुआ कि किसानों के लिए 'खेती–किसानी' का काम हानिकारक साबित होने लगा। खेती की लागत के हिसाब से फसल की पैदावार नहीं होने लगी। फलतः किसान खेतीबारी त्याग कर आजीविका की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। गांवों और खेती–किसानी करनेवाले ग्रामीणों के लिए यह अच्छी स्थिति नहीं है। यही स्थिति जारी रही तो राज्य के हालात बदतर हो जायेंगे। संपूर्ण देश में अन्न की उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

Scanned by CamScanner

हमारे पूर्वज 'जल-संग्रहण' के कई उपायों का इस्तेमाल करते थे। आज उन्हीं को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता आ गई है। यह दुखद है कि 'खेती के आधुनिक तरीकों' के नाम पर 'जल-संग्रहण' के कई पारंपरिक उपायों की उपेक्षा हुई। इसे हतोत्साहित किया गया अथवा भुला दिया गया। जबकि वर्तमान जल-संकट की स्थिति में वे अत्यन्त कारगर साबित हो सकते हैं। क्योंकि जल-संग्रहण के इन उपायों को लागू करने में लागत कम है। ग्रामीण सामूहिक प्रयास से इनका निर्माण आसानी से कर सकते हैं। इससे दो फायदे एकसाथ होंगे। एक सामूहिकता मजबूत होगी। और, दूसरा यह कि खेतीबारी अथवा अन्य घरेलू उपयोग के लिए पानी संग्रह कर रखा जा सकेगा।

प्रस्तुत पुस्तिका में उन्हीं पारंपरिक 'जल-संग्रहण' की व्यवस्थाओं का उल्लेख किया गया है। इनका निर्माण या पुनरूद्धार कर इनको उपयोगी बनाया जा सकता है। अनुमान है कि इनमें से ज्यादातर उपायों को झारखंड के किसान जानते हैं। कहीं-कहीं पर इनका इस्तेमाल भी लाभकारी ढंग से किया जा रहा है। इस पुस्तिका के माध्यम से हम पूर्वजों द्वारा इस्तेमाल किये जानेवाले 'जल-संग्रहण' के तरीकों को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। इसके लिए किसानों को उत्साहित करना चाहते हैं। उनको पानी की कम खपत से होनेवाली फसलें उपजाने के लिए भी प्रेरित करना चाहते हैं। आशा है इस पुस्तिका के पठन-पाठन से किसान 'बाजार' पर निर्भरता से विमुख होंगे। गांव के स्वावलंबन की ओर उन्मुख होंगे।

- संवाद टीम

Scanned by CamScanner

खेती-किसानी और पानी

पिछले बीस-पचीस वर्षों में मौसम का मिजाज तेजी से बदला है। इससे पूरी दुनिया में 'जल संकट' उत्पन्न हो गया है। मनुष्य ने अपने लाभ के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया है। इससे मौसम भी अपना मिजाज बदलने के लिए मजबूर हुआ है। मनुष्य की लालच ने धरती पर से जंगलों का सफाया किया। औद्योगीकरण और खनन कार्यों के कारण जल, हवा, मिट्टी सब प्रदूषित हुए हैं। इसका सबसे अधिक कुप्रभाव धरती के जल पर पड़ा है। कहते हैं ''जल ही जीवन है!'' इस उक्ति में सच्चाई है। सभी के लिए जल एक अनिवार्य आवश्यकता है। अगर तीसरा विश्वयुद्ध होगा, तो वह पानी पर वर्चस्व को लेकर होगा। ऐसा समझदार लोग कहने लगे हैं।

बहरहाल, तीसरे विश्वयुद्ध के अन्य कारण भी गिनाए जा सकते हैं। लेकिन जल-संकट की समस्या धीरे-धीरे विश्वव्यापी बनती जा रही है। इतना तो तय

Scanned by CamScanner

है। मानव-सभ्यता का इतिहास गवाह है कि सभी सभ्यताएं जल स्रोतों के किनारे विकसित हुईं। मसलन नदी, सागर जैसे जलस्रोतों के किनारे। चाहे वह नील नदी हो, दजला-फुरात हो या फिर सिन्धु या वोल्गा नदी। इसी क्रम में मनुष्य ने जल-संग्रहण की विधि विकसित की। पानी सहेजकर रखने की तकनीक भी बनाई। अपने अनुभव आधारित ज्ञान के बल पर कई पद्धतियां विकसित कर ली।

हमसब जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इस कारण उसने जल-संग्रहण के तरीकों को भी सामूहिक लाभ हेतु बनाया। यह सामूहिक रूप से विकसित किया गया था। इसके परंपरागत तरीके झारखंड के आदिवासी इलाकों में आज भी विद्यमान हैं। घोर जल संकट की स्थिति में भी आदिवासी समुदाय ने अपना अस्तित्व बनाये रखा। यह समुदाय समाज को भी बचाकर रख पाने में सक्षम हुआ।

झारखंड में औसतन प्रतिवर्ष 1300 मिलीमीटर वर्षा होती है। खेतीबारी के लिए इतनी वर्षा पर्याप्त मानी जाती है। लेकिन फिर भी झारखंड को सूखा प्रवण क्षेत्र माना जाता है। यह जानकर हैरानी हो सकती है कि पहले ऐसा नहीं था। सूखे से निपटने के देशज उपाय लोगों के पास थे। लेकिन आजादी से पहले विदेशी शासन ने इसकी घोर उपेक्षा की। और आजादी के बाद देसी शासन ने भी। इन कारगर उपायों को प्राचीन, अवैज्ञानिक और अव्यावहारिक बताकर नकार दिया। जबकि ये आज भी प्रभावकारी हैं।

प्राचीनकाल से ही यहां जल-संग्रहण के कई देशज तरीके प्रचलित थे। उनमें आहर, तालाब, पइन, पोखर, मटकुआं, डोभा, कच्चा बांध आदि प्रमुख हैं। जल-संग्रहण के इन सभी उपायों का उद्देश्य है- 'सर्वेन भवन्तु सुखिनः'। इस तर्ज पर ये सभी तरीके जनोपयोगी हैं। झारखंड के सभी प्रमण्डल में जल-संग्रहण के पारंपरिक तरीके आज भी देखे जा सकते हैं। लेकिन देखभाल के अभाव में उनकी हालत अब खस्ता हो चली है।

झारखंड के किसानों ने पहाड़ों की चट्टान से झरने वाले जल को संजोया। तराई इलाकों में जमीन से रिसने वाले जल स्रोतों को संवारा। वर्षा जल संग्रहण तक की खास व्यवस्था बनाई। इससे सूखे की विषम स्थिति में भी वे खेतीबारी कर लिया करते थे। इसके लिए उन्होंने खास किस्म के सूखा निरोधी बीज विकसित किये। जंगल के पत्तों व खर-पतवार और गोबर के मिश्रण से खाद बनाये। इन लोगों ने देशज कीटनाशक तक का इजाद भी कर लिया था।

Scanned by CamScanner

मेंड़बंदी

झारखंड का अधिकांश भूभाग पठारी इलाका है। इस कारण यहां के खेतों की बनावट मैदानी इलाकों से भिन्न हैं। यहां खेत के चारों तरफ मेंड़ खड़े किये जाते हैं। इससे उनके अंदर पानी का ठहराव होता है। आवश्यकता से अधिक पानी का ठहराव फसल के लिए नुकसानदेह होता है। इसलिए मेंड़ों की ऊंचाई, पानी को रोक कर रखने की आवश्यकता के अनुसार होती है। अधिक पानी मेंड़ कन्हवा (नाली) से बहकर निकल जाता है। कृषि वैज्ञानिक भाषा में कह तो इसे 'कन्टूर ट्रेन्च' कह सकते हैं। वैसे इस पर बहस हो सकती है कि ये मेंड़ वास्तव में 'कन्टूर ट्रेन्च' हैं या नहीं!

यहां इस बहस में नहीं पड़ना है। अभी हम यह देखेंगे कि किसानों ने बरसात के पानी को बचाकर रखने के लिए मेंड़बंदी क्यों की? जंगल से बहकर आनेवाले घास-फूस, पत्ते को खेतों में समेटना इसका उद्देश्य था। आमतौर पर इन मेंड़ों की ऊंचाई और चौड़ाई एक से दो फुट तक होती है। जरूरत के मुताबिक इनकी ऊंचाई व चौड़ाई में परिवर्तन भी किया जाता है। इन मेंड़ों पर प्राकृतिक रूप से घास उग आते हैं। इस कारण ये मजबूत और स्थायी बन जाते हैं। इन मेंड़ों पर ताड़,

Scanned by CamScanner

खजूर, आसन, पलाश और जामुन जैसे उपयोगी पेड़ लगाने का भी प्रचलन है। झारखंड के सभी इलाकों में इस प्रकार के मेंड़वाले खेत आज भी हैं। विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में।

खेतों के लिए पानी

यहां खेतों तक पानी पहुंचाने की पारंपरिक व्यवस्था की जाती रही है। इन उपायों में जल-स्रोत पर पत्थर व मिट्टी देकर कच्चा बांध बनाया जाता है। बहकर आने वाले वर्षा-जल के लिए ढलान पर कच्चा कुआं या गड्ढा बनाया जाता है। इसमें पानी जमा होता है। यदि ढलान बड़ी हो, तो इसके लिए अलग उपाय किए जाते हैं। बरसात के पानी को रोकने के लिए ढलान के अंत में आहर का निर्माण किया जाता है।

कच्चा बांध

कच्चा बांध को अस्थायी बांध भी कहते हैं। आमतौर पर ऐसा बांध छोटी नदी से निकली उप-नदी या नाले पर बनाया जाता है। यह बांध बालू और मिट्टी की मदद से अस्थायी रूप में बनाया जाता है। पानी की धार को रोककर रखने के लिए यह जरूरी है। आमतौर पर इस प्रकार का बांध धान फसल के बाद नवंबर-दिसंबर

Scanned by CamScanner

के महीनों में बनाया जाता है, ताकि बहकर आनेवाले पानी का ठहराव अधिक मात्रा में हो। इसके पानी का उपयोग साग-सब्जी अन्य फसलों की सिंचाई के लिए किया जाता है। पानी की कमी के दिनों में यह पानी पालतू पशुओं के पीने के काम आता है। नहाने-धोने के काम में भी इसका इस्तेमाल होता है। इस प्रकार से बनाये गये अस्थायी बांध बरसात में बह जाते हैं।

कच्चे बांध की ऊंचाई करीब तीन से पांच फीट होती है। यह जरूरत के मुताबिक इससे कम या अधिक भी हो सकती है। इसकी चौड़ाई पानी की धार कितनी तेज है, इस पर निर्भर करती है। हालांकि आमतौर पर चौड़ाई भी ऊंचाई के बराबर ही रखी जाती है। अतिरिक्त पानी बांध के ऊपर से बहकर निकल जाता है। इस बांध के किसी एक छोर पर छोटा निकास द्वार भी बना दिया जाता है। इससे अतिरिक्त पानी वहां से निकलता रहता है। यह बांध को नुकसान होने से बचाता है।

अन्य प्रकार का कच्चा बांध बड़े ढलान की तलहटी पर बनाया जाता है। जहां से पानी बहकर निकलता है। इस प्रकार के बांध की ऊंचाई और चौड़ाई भी तीन से पांच फीट हो सकती है। लेकिन यह पानी के बहाव की तेजी पर निर्भर करता है। बांध कितनी ऊंचाई या चौड़ाई का बनेगा, यह बहाव से तय होता है। बांध की मेंड़ पर किसान आमतौर पर फलदार पेड़ लगाते हैं। या ऐसे पेड़ जिनके पत्ते खाद के लिए उपयोगी होते हैं। पेड़ से झड़कर गिरनेवाले पत्ते पानी की धार के साथ सीधे खेतों में पहुंच जाते हैं। इस प्रकार के बांधों के नीचे प्रायः बड़े-बड़े रकबा वाले खेत होते हैं। इस बांध के पानी का उपयोग सूखा के समय में किया जाता है। कम वर्षा या समय पर वर्षा न होने की स्थिति में भी इसका उपयोग किया जाता है।

Scanned by CamScanner

तालाब या आहर

तालाब और आहर का इतिहास बहुत पुराना है। जल-संग्रह करने का यह बहुत कारगर उपाय है। इसका उपयोग इस क्षेत्र के किसान सैकड़ों वर्षों से करते आ रहे हैं। मध्यकालीन इतिहास की बात करें तो तालाबों का जिक्र 'आइने अकबरी' में है। गुलाम भारत के समय में अंग्रेजों ने अपने दस्तावेजों में तालाबों का उल्लेख किया है। अंगरेजी शासक छोटानागपुर तथा संतालपरगना क्षेत्र में बने तालाबों को देखकर आश्चर्यचकित थे।

अंगरेजी सत्ता ने वर्ष 1901-1903 में सिंचाई आयोग गठित किया था। इसकी एक रिपोर्ट में 'जॉन रीड' ने लिखा है कि 'यहां की जमीन पर सिंचाई की व्यवस्था बहुत कम है। लेकिन सिंचाई की जितनी व्यवस्था है उसमें से 90 प्रतिशत सिंचाई की जरूरत तालाबों से पूरी होती है।' 'जॉन रीड' के रिपोर्ट की वास्तविकता का पता 1960-61 की एक अन्य रिपोर्ट से भी चलता है। इसमें कहा गया है कि उस समय सिंचित भूमि 149606 एकड़ थी, जिसमें से 95376 एकड़ भूमि की सिंचाई तालाबों से ही होती थी। यहां स्पष्ट हो जाता है कि छोटानागपुर - संतालपरगना में सिंचाई की उपयोगी व्यवस्था तालाब या आहर थे।

तालाब की बनावट बांध से थोड़ी अलग होती है। तालाब आहर निर्माण के लिए थोड़ी नीची जगह चुनते हैं। इसे बांध से चारों तरफ या तीन तरफ से घेर दिया जाता है। तीन तरफ से घेरने की अवस्था में चौथे छोर को खुला छोड़ दिया जाता है। इस ओर से बरसात का पानी बहकर आता है। तालाब चारों तरफ से घिरे हों तो उसमें चारों तरफ नालियां बनाई जाती हैं। इन नालियों से बाहर का पानी तालाब में आता है। अतिरिक्त पानी को निकालने के लिए ढलान की ओर निकास भी बनाया जाता है। तालाब के बांध पर भी फलदार पेड़ लगाए जाते हैं। यहां साग-सब्जी भी उगाई जाती है।

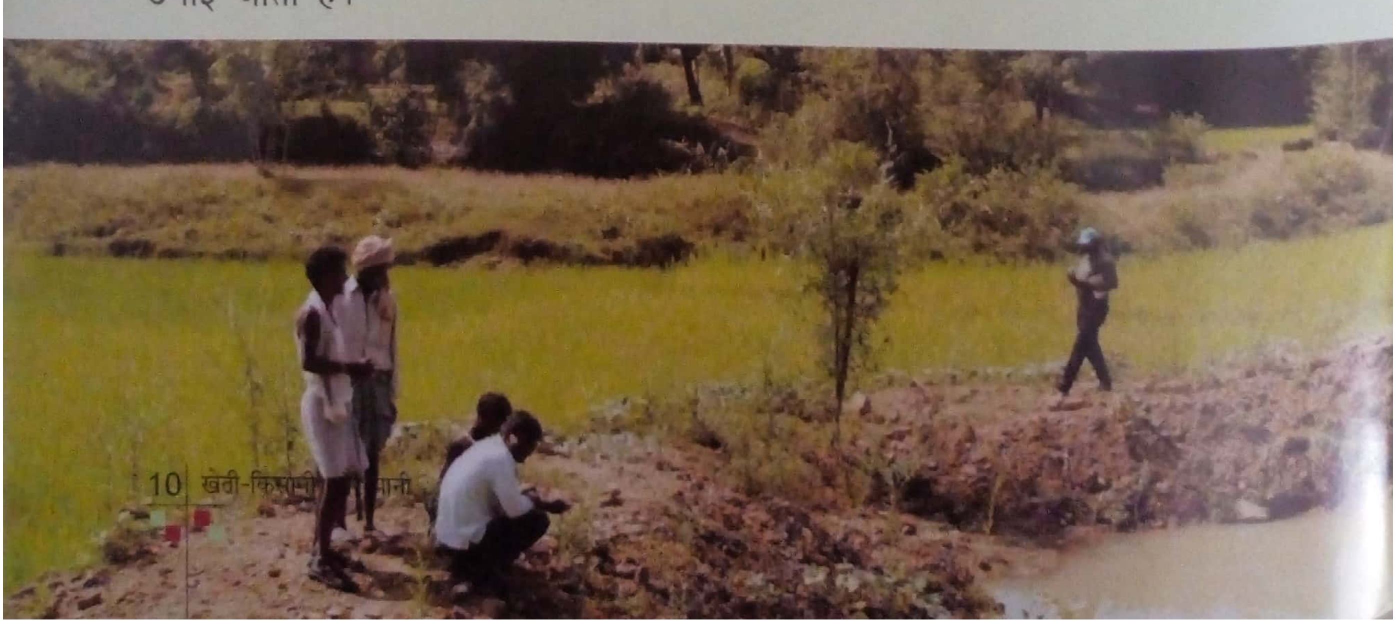

कच्चा गड्ढा/कच्चा कुआं

कच्चा गड्ढा/कच्चा कुआं पानी सहेजने का कारगर उपाय है। खेतों की सिंचाई करने का यह बहुत पुराना तरीका है। खेत के ही एक कोने में 5 फीट से 7 फीट व्यास का एक गड्ढा/कुआं खोदा जाता है। यह गोलाकार या चौकोर भी हो सकता है। इसकी गहराई साधारणतया 10 से 15 फीट तक होती है। कच्चे कुएं का जगत जमीन के समानांतर होता है। अथवा 6 इंच से लेकर एक फीट तक ऊंचा हो सकता है। यह उस इलाके में अधिक कारगर होते हैं जहां भूगर्भ जल का स्तर अच्छा होता है।

डोभा

झारखंड के किसान दूरदर्शी थे। अभी भी हैं। यह सभी जानते हैं कि झारखंड के अधिकांश भूभाग पठारों व वनों से अच्छादित है। समतल भूमि न होने के कारण यहां खेतों की बनावट प्रायः ढलवां होती है। इस इलाके में खेतीबारी के लिए अमूमन पर्याप्त वर्षा होती है। भूमि ढलवां होने के कारण वर्षा के पानी का बहाव तेज होता है। इससे पानी के साथ-साथ उपजाऊ मिट्टी भी बहकर निकल जाती है। किसानों को इसका अनुभव था। इसीलिए किसानों ने तालाब, आहर, पोखर, चुंआं, मटकुआं, पइन, नाला, कच्चा बांध और डोभा इत्यादि की व्यवस्था बनाई। ताकि बहकर निकल जानेवाले पानी का संग्रहण किया जा सके।

Scanned by CamScanner

अभी जो सरकारी डोभा बन रहा है उसका क्षेत्रफल भिन्न-भिन्न है। कहीं 10 फीट लम्बाई X 10 फीट चौड़ाई X 10 फीट गहराई रखा जाता है। तो कहीं 20 फीट, 20 फीट भी है। लेकिन पारंपरिक डोभा के लिए यह क्षेत्रफल अनिवार्य नहीं है। यह पानी के बहाव की तीव्रता और उपलब्धता पर निर्भर करता है। इसकी लम्बाई, चौड़ाई और गहराई कितनी हो, यह किसान अपने अनुभव से तय करते हैं। डोभा निर्माण में यह ध्यान रखा जाता है कि इसकी चारो दीवारें कुएं के समान खड़ी न खोदी जाएं। बल्कि उनको ढलवां बनाया जाए। ताकि किनारे पर कम और बीच में अधिक पानी रहे। इससे दुर्घटना होने की संभावना कम हो जाती है।

पारंपरिक तौर पर डोभा का निर्माण उक्त ढंग से किया जाता था। ताकि खेतों का अतिरिक्त पानी उसमें जमाकर रखा जाए, और जरूरत पड़ने पर भविष्य में उसका उपयोग किया जा सके। सूखा पड़ने की स्थिति में इसका उपयोग नहाने-धोने तथा अन्य घरेलू काम में होता था। डोभा का पानी पालतू पशुओं की आवश्यकता की पूर्ति करता था। इसके अलावा किसान इसके पानी का कई प्रकार से उपयोग करते हैं। जैसे मछली पालन, घोंघी पालन अथवा बत्तख पालन के लिए भी करते हैं। यह भूगर्भ जल की सतह को ऊपर लाने में सहायक सिद्ध होता है। कुल मिलाकर यह एक बहुद्देशीय व्यवस्था है।

Scanned by CamScanner

खेती-किसानी

जल-संग्रहण के पारंपरिक उपायों से जल संकट से बचा जा सकता है। सूखे की स्थिति से बचने के लिए यहां के किसानों ने अपने उपाय सोचे थे। कम पानी में उपजने वाले फसलों की खेती का एक कारगर उपाय निकाला था। यहां ऊपरी खेतों का वर्गीकरण टांड़ और बारी के रूप में किया गया था। अभी यह वर्गीकरण बरकरार है। बारी आमतौर पर घर के आस-पास ही होती है। यह टांड़ की अपेक्षा अधिक उपजाऊ भी होती है। टांड़ खेत प्रायः ऊपरी जमीन पर बनाया जाता है। जिसमें वर्षा के पानी के ठहराव की संभावना कम ही होती है। कम सिंचाई से सामान्य पैदावार देनेवाली फसलों में कुरथी, गोंदली, घंघरा, बरबट्टी, मूंग, मडुआ, कोदो इत्यादि प्रमुख हैं। बारी में मकई, बाजरा, मिर्च, टमाटर, विभिन्न प्रकार की हरी सब्जियां, अरहर, सरसों आदि लगाने का प्रचलन है।

निचली जमीन पर बने खेत भी दो प्रकार के होते हैं। वैसे खेत जो निचली जमीन पर बने खेतों की अपेक्षा ऊपरी जमीन पर बने होते हैं। इसको 'बाद' और गहराई में बने खेतों को 'जोला' कहते हैं। 'बाद' खेतों में कम पानी में उगने वाले धान लगाये जाते हैं। यह धान कम समय में ही ज्यादा पैदावार दे देता है। इसके विपरीत गहराई वाले खेतों में अलग तरह के धान लगाये जाते हैं। जहां पानी का जमाव अधिक रहता है, वहां अलग तरह के धान रोपे जाते हैं। इनके पकने व तैयार होने में अधिक समय लगता है। इसके अतिरिक्त ऐसे बीजों की विशेषता यह है कि अधिक पानी में ये सड़ते-गलते नहीं हैं। ऐसे किस्म के पौधों की लम्बाई भी ऊपरी खेतों में लगाये जानेवाले पौधों की अपेक्षा अधिक होती है।

Scanned by CamScanner

किसान क्या कर सकते हैं?

धरती के मिजाज में बदलाव आ जाने से मौसम बदल गया है। यह बात हम सब जानते हैं। वर्षा या तो असमय, अत्यधिक अथवा कम होती या नहीं भी होती है। ऐसी स्थिति में वर्षा पर आश्रित होकर खेती कर पाना कठिन होता जा रहा है। दूसरी दिक्कत खाद-बीज की है। झारखंड के किसानों के पास सिर्फ धान की ही सैकड़ों किस्में थीं। लेकिन विगत 40-50 वर्षों में वैसे पारंपरिक धान की किस्मों का सफाया हो गया है। अभी जो बचे हुए हैं, उनको उंगलियों पर गिना जा सकता है। वर्तमान में धान की फसल उगाने के लिए किसान बाजार से धान-बीज खरीद कर उपयोग कर रहे हैं। इनसे भोजन के लिए चावल बनाया जा सकता है। लेकिन अगले वर्ष के लिए उससे बीज बचाकर रखा नहीं जा सकता है। क्योंकि वे अनुत्पादक होते हैं और जल्द खराब हो जाते हैं। यानी किसान बाजार पर आश्रित हो जाता है। इस बीज के लिए उपयोग में रसायनयुक्त खाद भी बाजार से खरीद कर लाते हैं। कीटनाशक भी रसायनयुक्त और जहरीले होते हैं। ये तत्काल फसल की पैदावार बढ़ाते हैं। लेकिन कुछ समय बाद खेतीबारी के लिए उपयोगी कीट-पतंग और कीड़े-मकोड़ों का समूल नाश कर देते हैं। ये जमीन को अनुपजाऊ भी बनाते हैं। बाजारू बीज, खाद व कीटनाशक का प्रयोग जिस खेत में किया जाता है। उसमें पानी भी अधिक लगता है। रसायनयुक्त खाद व कीटनाशक के प्रयोग से होनेवाली पैदावार में भी जहरीला प्रभाव रह जाता है। यह मानव उपभोग के लिए खतरनाक होता है।

इस खतरनाक स्थिति से बचने के लिए किसान क्या कर सकते हैं? इस खतरनाक स्थिति से निपटने का एक ही सरल व सहज उपाय है-पारंपरिक जैविक खेती। पारंपरिक का अर्थ हुआ कि वैसे बीज, खाद और प्राकृतिक कीटनाशक जिसका उपयोग पूर्वज किया करते थे। इनको पुनर्जीवित कर उन्हीं का उपयोग करना। पूर्वजों द्वारा की जानेवाली खेतीबारी हर प्रकार से सुरक्षित, स्वावलंबी और टिकाऊ व्यवस्था थी। बाजार के चौतरफा दबाव के बावजूद यहां के कुछ आदिवासी इलाकों में किसानों ने धान, मकई, मडुवा, बाजरा आदि के पारंपरिक बीज अभी भी बचाकर रखे हैं। इनकी खेती वे पारंपरिक तरीके से करते हैं। गोबर-खरपतवार एवं नीम की खल्ली से देसी खाद बनाते हैं। राख जैसे कीटनाशक का उपयोग वे आज भी करते हैं।

Scanned by CamScanner

वर्तमान में पूरी दुनिया प्रकृति और मौसम में बदलाव को लेकर चिंतित है। वह बदलाव जिससे मानव-जाति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। इससे बचाव का उपाय पूरी दुनिया तलाश रही है। इसलिए पश्चिम के विकसित देशों में भी चिंता बढ़ी है।

विध्वंस व विनाश की ओर दिनोंदिन दुनिया बढ़ती जा रही है। इससे धरती को बचाने का एक ही उपाय है कि हम प्रकृति को अपना सुरक्षा कवच समझें। इसकी रक्षा के लिए पारंपरिक बीजों के साथ पारंपरिक गैर-रसायन खेती की ओर उन्मुख हों। दुनिया तभी बचेगी, जब धरती बचेगी। और जब धरती बचेगी तभी मनुष्य बचेगा। इसलिए विनाश की कगार पर पहुंच चुकी धरती को बचाना है। यह काम खेती-किसानी और पानी संग्रहण की प्रक्रिया में बदलाव लाकर संभव है।

■■■

Scanned by CamScanner

संवाद : एक परिचय

'संवाद' ट्रस्ट रजिस्ट्रेशन एक्ट 1882 के अंतर्गत निबंधित है। इसका निबंधन दिनांक 21 मार्च 2001 को रांची में हुआ है।

संवाद का उद्देश्य

- समतावादी और न्यायमूलक समाज की स्थापना के लिए विभिन्न जनसंगठनों, समूहों, संस्थाओं एवं व्यक्तियों को संगठित करना तथा इनके बीच समन्वय स्थापित करना।
- समता, लैंगिक समानता, स्वतंत्रता, न्यायमूलक तथा भाईचारा व बहनापा की स्थापना हेतु लोगों को जागरूक करना।
- शोषण, अन्याय, अत्याचार से मुक्त समाज की स्थापना करना तथा देशज सांस्कृतिक अस्मिता को स्थापित करना।
- परंपरागत पद्धति को बिना छेड़े सामाजिक-आर्थिक तथा पर्यावरणीय तंत्र को विकसित करना। इसके लिए सामाजिक कार्यकर्ता, वैज्ञानिक, इंजीनियर, बुद्धिजीवी तथा कलाकार की तलाश करना तथा इनके विचारों एवं अनुभवों को जनता के साथ आदान-प्रदान करना।
- सतत् विकास तथा देशज सांस्कृतिक अवधारणा को ग्राम स्तर तक ले जाना।
- महिला, आदिवासी, दलित तथा अल्पसंख्यकों के बीच सामाजिक एवं आर्थिक विकास करना।
- आदिवासी जीवन पद्धति के सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, संवर्द्धन करना। इसके लिए अध्ययनं एवं शोध कार्य करना।
- सेकुलर समाज की स्थापना के लिए पहल करना।
- चेतना निर्माण के लिए शिक्षण-प्रशिक्षण एवं संसाधन केंद्र की स्थापना करना।
- अध्ययन एवं शोध केंद्र, पुस्तकालय, दस्तावेज केंद्र, संग्रहालय, दृश्य श्रव्य केंद्र की स्थापना करना।
- स्थानीय तथा क्षेत्रीय इतिहास, संस्कृति, लोककला तथा दस्तकारी का दस्तावेजीकरण एवं संरक्षण।
- पूर्ण अलाभकारी तथा सेकुलर संस्थाओं को विकसित करना।

वर्तमान कार्यक्षेत्र

झारखंड

वर्तमान कार्यक्रम एवं गतिविधियां

- स्वशासन एवं पंचायती राज
- ग्रीन इनर्जी एवं जलवायु परिवर्तन
- बाल अधिकार
- परंपरागत आदिवासी कला एवं संस्कृति पर शोध एवं अध्ययन
- कृषि एवं सतत् आजीविका
- महिला सशक्तिकरण
- अध्ययन, शोध एवं प्रकाशन
- फिल्म एवं संचार सामग्री निर्माण

कला पक्ष : इंडिजिनोग्राफिक्स, **प्रकाशक** : संवाद, 104/ए, उर्मिला इंक्लेव, पीस रोड, लालपुर, रांची
मुद्रक : कैलाश पेपर कन्वर्सन प्रा. लि., रांची

सीमित प्रसार

Scanned by CamScanner